प्रसंगशः

आलोक मेहता

भारी होती जेब के साथ फटती कमीज

संपन्न राष्ट्रों में बढ़ती गरीबी से तनाव, संघर्ष और अराजकता के खतरे

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिगलिट्ज के अनुसार वैश्वीकरण से अमेरिका सहित कई राष्ट्र अधिक संपन्न हो रहे हैं लेकिन उनकी जनता गरीब हो रही है। उनका मानना है कि वैश्वीकरण की प्रतियोगिता श्रमिकों और कर्मचारियों के लिए नुकसानदेह साबित हुई है। उनके वेतन और स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए दशकों से चल रही योजनाओं में कटौती हो रही है। अर्थशास्त्री स्टिगलिट्ज किसी एशियाई अथवा लातीनी अमेरिकी देश के नहीं हैं। वह अमेरिकी हैं और अमेरिका में श्रमजीवी वर्ग की बिगड़ती हालत से चिंतित हैं। इसलिए उनकी बात पर गंभीरता के साथ ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत के नीति-निर्धारक और आला अफसर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतियोगिता, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का हवाला देकर भारतीय समाज का दिल-दिमाग बदलने की दुहाई देते हैं। वे यह तथ्य भुलाना चाहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की साख बुरी तरह गिर चुकी है। एशिया के जिन देशों ने उसका अनुगमन किया, उनकी आर्थिक हालत खस्ता हो गई। लातीनी अमेरिका के अर्जेंटीना जैसे देश तो कुछ समय पहले दिवालिया की स्थिति में आ गए थे। वैश्वीकरण के चक्कर में मेक्सिको और अमेरिका में व्यापारिक असंतुलन से मेक्सिकन किसानों की हालत खराब हो गई। व्यापारियों की पौ-बारह भले ही बढ़ गई हो, मेक्सिकन गांवों के लोगों के लिए अमेरिका से आयातित सस्ती मक्का ही आर्थिक बोझ बन गई। यह मक्का अमेरिका भारी सब्सिडी पाने वाले अपने किसानों की उपज के रूप में बेचता रहा, जबकि मेक्सिकन किसान इतने कम दाम पर अपनी फसल बेचने की हालत में नहीं। भारत उसी दिशा में आगे बढ़ रहा है। भारत में कम दाम पर विदेशी गेहूं, चीनी इत्यादि का आयात होने लगा है तथा बड़े पैमाने पर विदेशी फल-सब्जी को बाजार में लाने की तैयारी है। खुदरा बाजार में प्रवेश कर रहे एक बड़े औद्योगिक समूह ने हाल में 50 करोड़ रुपये के परदेशी सेब मंगवाने का इंतजाम किया है। अभी विदेशी कार, टेलीविजन-रेडियो सेट, घड़ियों, मोटरसाइकिल या अन्य इलेक्ट्रॉनिक सामान की बाजार में बाढ़ आने पर तर्क दिया जाता रहा कि भारतीय कंपनियों को प्रतियोगी बनना ही होगा लेकिन जब विदेशी सेब, अंगूर, केले, आम, आलू, टमाटर 2 से 5 रुपये किलो या उससे भी सस्ते बिकने लगेंगे तो भारत में खेती-बाड़ी करने वाला किस दम पर प्रतियोगी बन पाएगा? भारत में बिजली, पानी, बीज, खाद कौन सा सस्ता हो गया है?

विश्व बैंक में रहकर आधुनिक अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञ बने भारतीय अफसरों का तर्क है कि भारतीयों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। अपने सभी दरवाजे खोलने होंगे। पता नहीं उनका ध्यान इस बात पर क्यों नहीं गया कि उनकी 'आदर्श' अमेरिकी व्यवस्था में पिछले 10 वर्षों के दौरान सामान्य नागरिकों की पेंशन, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा में निरंतर कटौती से सामाजिक बेचैनी बढ़ती गई है। संपन्नता के साथ निम्न आय वर्ग वाला समूह अधिक व्यापक हो गया है। भारत में संपन्न वर्ग के लिए टैक्स कटौती को लेकर औद्योगिक-व्यापारिक संगठनों, राजनीतिक दलों, कुछ टी.वी. चैनलों के जरिये अभियान चलाए जाते हैं लेकिन उन्हें कोई यह नहीं दिखाता कि आस्ट्रेलिया या स्वीडन जैसे देशों में टैक्स चोरी की न्यूनतम गुंजाइश के बावजूद वार्षिक आय पर 40 से 50 प्रतिशत तक टैक्स का प्रावधान है। भारत का यह कैसा उदारवाद है जो सिर्फ मेहनत-मजदूरी और ईमानदारी से कमाई करने वालों पर अधिकाधिक बोझ डालने के मामले में 'उदार' है? इस माहौल में राजनीतिक लाभ के लिए सत्तारूढ़ गठबंधन की सरकार ने एक बार फिर 'गरीबी उन्मूलन' योजना अपनाने की घोषणा की है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने पिछले दिनों इंदिरा गांधी के गरीबी हटाओ के 20 सूत्रीय कार्यक्रम को नए ढंग से सजा-संवारकर जमीन पर उतारने का फैसला किया। कहा गया कि उस कार्यक्रम में लगभग एक सौ बिंदु थे और बदली परिस्थितियों में वर्तमान सरकार 64 बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करेगी। इनमें अन्न सुरक्षा, सबको आवास, स्वच्छ पेयजल, समान शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, महिला-बाल-युवा कल्याण तथा ई कॉमर्स जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम शामिल रहेंगे। उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तरांचल जैसे राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव से पहले इंदिरा गांधी के पुराने फोटो के साथ गरीबी हटाओ के पोस्टरों को पुनः छपवाने और नए कल्याणकारी कार्यक्रमों का बिगुल बजाया जा रहा है लेकिन छोटे कल-कारखानों की तरह छोटी दुकानों को बंद कर अमेरिकी 'वॉल मार्ट' की शाखाएं खोलने से छोटे व्यापारियों और किसानों के हितों की रक्षा कैसे होगी? वॉल मार्ट तो अमेरिका के परम प्रिय जर्मनी और दक्षिण कोरिया में भी विफल रहा। जापान और चीन में उसे पैर जमाने के लिए जूझना पड़ रहा है।

सरकार सबको समान शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं के सपने दिखाना चाह रही है। लेकिन निजीकरण के दौर में शिक्षा-दीक्षा और इलाज निरंतर महंगा होता जा रहा है। स्वच्छ पेय जल देश की राजधानी में आसानी से उपलब्ध नहीं है और बोतलबंद पानी बेचने वाली कंपनियां अवश्य बढ़ती जा रही हैं। सरकारी अस्पतालों में एक्स रे और खून की जांच करने वाली मशीनें खराब या कम होती जा रही हैं और निजी केंद्रों में जांच-परीक्षण के रेट बराबर बढ़ रहे हैं। छोटा मकान बनाने के लिए ईंट, सीमेंट, सफेद पत्थर, कवेलू, लोहा तक निरंतर महंगा हो रहा है। महानगरों के इर्द-गिर्द खड़ी की जाने वाली इमारतों के फ्लैटों की कीमत लाखों में पहुंच रही है और दिन-रात मजदूरी करने वालों की झोपड़ियां तक तोड़ी जा रही हैं। दिल्ली से लेकर छोटे शहरों तक के विकास प्राधिकरणों को मुनाफा कमाकर दिखाने का लक्ष्य दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में गरीबों को सस्ते घर कौन बनाकर देगा?

नया गरीबी उन्मूलन अभियान शुरू होने से पहले योजना आयोग ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का एक कच्चा दृष्टिकोण-पत्र विचार-विमर्श के लिए जारी किया है। इस दस्तावेज में कई तरह के विरोधाभास हैं। एक तरफ भारतीय अर्थव्यवस्था के तेजी से विकास का दावा किया गया है लेकिन अशिक्षित, कुपोषण के शिकार गरीब लोगों की स्थिति में सुधार के लिए कोई ठोस निराकरण नहीं दिया है। विदेशी पूंजी विनियोजन 2 से 5 अरब रुपये तक पहुंचने की बात कही गई है। लेकिन इस राशि का बड़ा हिस्सा भारतीय कंपनियों के अधिग्रहण में लगा है। औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी अनुसंधान और विकास के लिए चीन और दक्षिण कोरिया अरबों रुपया खर्च कर रहे हैं। भारत में इस काम के लिए लगभग 4 अरब डॉलर ही खर्च हो रहा है। भारत में जरूरत छोटे कल-कारखानों को विकसित करने की है। विकास दर 7 प्रतिशत से 10 प्रतिशत हो जाने की महत्वाकांक्षा रखना अच्छा है लेकिन नागरिकों की आय में तेजी से बढ़ रही भारी असमानता को रोकने के लिए क्या किया जा रहा है अथवा क्या योजना बनाई जा रही है? सामाजिक सुरक्षा के संसाधनों में बढ़ोतरी के बजाय कटौती से भारतीय समाज को खुशहाल कैसे बनाया जा सकेगा? ●